वृत्तपत्राचे नांव :– स्वतंत्र वार्ता
वृत्तपत्र प्रकाशनाचे ठिकाण :– हैद्राबाद
वृत्तपत्र पान क :– 6
दिनांक :–04 / 08 / 2002

# सत्य का शिलान्यास : वैदिक काव्य

**श्री रमेशचन्द्र शाह हिन्दी के एक मूर्धन्य चिंतक और रचनाकार है। कुछ वर्षों पहले टेमेनॉस अकादमी इंग्लैंड में उनके कुछ महत्वपूर्ण व्याख्यान हुए थे। उनमें से एक व्याख्यान का सार और रपट, स्वयं श्री रमेशचन्द्र शाह ने प्रस्तुत की है।**

एक प्रख्यात जर्मन दार्शनिक ने काव्य की प्रकृति को, उसके असली स्वाभाव और स्वधर्म को बड़े सुंदर ढंग से परिभाषित किया है कि कविता का जन्म ही इसलिए हुआ कि सचाई की नींव- पुख्ता नींव-मनुष्य की चेतना में पड़ सके। यह बात, जब मैं पिछले दिनों 'ऋग्वेद' का अध्ययन कर रहा था, अचानक मेरे कान में कौंधी और मुझे लगा, यह मानव जाति के इस लगभग आदि काव्य पर जितने सटीक ढंग से लागू होती है, उनती संभवतः अन्य किसी प्राचीन काव्य पर नहीं। मैंने अपना व्याख्यान यही से आरंभ करते हुए कहा था कि यदि ऐसा है तो फिर हमें वेद को हमारे आज के प्रत्यक्ष जीवनानुभव से जोड़कर समझना होगा। मात्र एक व्यतीत युग की मानसिकता और जीवनचर्या की तरह उसे देखना निष्प्राण विद्वत् चर्या है, जो इस अनूठी मानवीय विरासत के साथ हमारे रिश्ते को शुरू से ही बाँझ बना देती है। वह आद्य-प्राथमिक वाग्विभव है। सत्य को उसके स्रोत पर ही पकड़ने, सुनने और बखानने की चमत्कारपूर्ण घटना, जिसकी ताजगी अक्षय है। सहस्त्राब्दियों से वे जातीय स्मृत्ति में सुरक्षित हैं तो क्यों? कैसे? वे कोई ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं हैं, जैसा कि अन्य कई जातियों के ग्रंथ स्पष्ट रूप से है। तो हजारों साल से उन्हे यथावत् उसी क्रम में सुरक्षित रखने का चमत्कार कैसे और क्योंकर संभव हुआ? इसीलिए न कि वे सामान्य अनुभव और सामान्य बातों की स्मृति भर नहीं थे, बल्कि वाणी और सत्य के एक सर्वथा अनूठे और नित्य संबंध के साक्षी थे। उनकी वैधता महान् प्रेरणादीप्त काव्य की तरह असंदिग्ध और शाश्वत अजर-अमर लगी होगी, तभी न उन्हें 'स्मृति' से अलग और विलक्षण कोटि में रखा गया, 'श्रुति' कहा गया। प्रख्यात आधुनिक मनोविज्ञानिक कार्ल युंग ने कहीं कहा है कि 'मनुष्य की नियति और इस सृष्टि में उसके होने की सार्थकता ही इसमें है कि वह जड़ में सुप्त चेतना को जगाए, विश्व में अधिकाधिक चेतना का सृजन करे।' अगर यह बात सच है तो कोई भी देख सकता है कि वेद रचने वाले कवियों ने मनुष्य की नियति को सबसे पहले और सबसे अच्छी तरह जाना, समझा और जिया। इतना ही नहीं, जिस विशिष्ट सभ्यता का प्रवर्तन इस तरह उनके हाथों हुआ, उस सभ्यता का मूलाधार और केंद्रीय सरोकार ही उन्होंने अधिकाधिक चैतन्य के कारण के जागरण और प्रसार को बनाया। मेरे जैसा सामान्य पाठक भी वैदिक ऋचाओं का पाठ करते हुए स्पष्ट अनुभव कर सकता है कि इनमें सचमुच ही मांन के आत्मचेतन होने की, अपनी खोज के साथ-साथ त्रिलोकव्यापी सृष्टि के भी सद्य आविष्कार और अनभुति की अंतः प्रक्रिया उजागार होती है और अपने 'स्व' तथा इस चराचर दृष्टि के बीच अखंड चैतन्य संबंधों की मर्मानुभूति की थी। यह वैदिक 'वाक्' मात्र एक मनुष्य - निर्मित वस्तु की तरह महसुस नहीं होती, न महज आपसी संप्रेषण के लिए उपयोगी एक साधन की तरह। यहाँ मैंने ऋग्वेद' के उस सूक्त का हवाला दिया, जो दिव्य-काव्य के प्रेरक बृहस्पति को संबोधित किया गया और जिसमें बताया गया है कि किस तरह यह 'वाक्', यह सृजनात्मक 'शब्द' ऋषियों की चेतना में अवतरित, स्फूर्त होता है और किस तरह किस प्रक्रिया से वह श्रृति के रूप में चरितार्थ होता है। यह भी, कि वाग्देवी की कृपा कितनी दुर्लभ्य है लोग आँखें रहते भी उसे देख नहीं सकते, कान रहते भी उसे सुन नहीं सकते, किंतु कोई विरला ही सौभाग्यशाली सुपात्र होता है, जिसके लिए वाग्देवी स्वयं को प्रकट करती है-जायेव पत्य उशती सुवासा'।

तत्पश्चात् कुछ वैदिक रूपकों का उल्लेख करते हुए मैंने संकेत किया कि किस तरह वे एक -दूसरे को आलोकित करते हैं और किस तरह समूचे भारतीय वाङ्मय में बारंबार पुनः सृजित होते-होते वे जातीय स्मृति का अंग बन गए हैं। धागे या बुनने का रूपक ही देखें, तो एक दिलचस्प बात हमारे सामने आती है कि जिसे हम 'टैक्स्ट' कहते हैं, और जिसका व्युत्पतिमूलक अर्थ कपड़े का टुकड़ा होता है और जो 'टैक्सटस'(यानी बुनी हुई वस्तु) से ही निकला है, उसका सर्वप्रथम इस अर्थ में प्रयोग तो 'ऋग्वेद' के कवियों ने ही किया है। वस्तुतः यज्ञ का मतलब ही देवताओं को शब्दों का यह बुना हुआ वस्त्र अर्पण करने का अनुष्ठान है। सात सूत्रों से बुना हुआ वस्त्र। यज्ञ की सृष्टि कैसे हुई, विराट् पुरुष द्वारा-इसे बखानने वाले सूक्त को उद्धृत करते हुए मैंने यह बात रखी। फिर मैंने बताया कि कैसे श्री अरविंद की अनुभूतिप्रवण व्याख्या पढ़कर ही मुझे वैदिक काव्य के मर्म में यत्किंचित् प्रवेश मिला। श्री अरविंद ने साबित कर दिखाया कि किस प्रकार 'ऋग्वेद' के मंत्र एक-दुसरे को आलोकित करते हैं- उन्हीं-उन्हीं शब्दों और भावों के द्वारा और भावों के बीच के उन्हीं-उन्हीं संबंधों के दुहराव के द्वारा। योगी और कवि का एक ही व्यक्तित्व और चेतना में संघटित होना दुर्लभ संयोग है और इस अद्भुत संयोग का ही फल था कि श्री अरविंद वैदिक सूक्तों, वैदिक रूपकों प्रतीकों के मर्म और अभिप्राय को उस तरह खोल सके जिस तरह कोई काव्य मर्मज्ञ गूढ़ प्रतीकवादी काव्य के भीतर अपनी पैठ प्रदर्शित करता है।

तदुपरांत मैंने पश्चिमी विद्वानों द्वारा वेदों पर किए गए कार्य का आलोचनात्मक उल्लेख करते हुए उससे उपजी भ्रांति और अनर्थ को उजागर किया और इस दुर्व्याख्या के मूल में पाश्चात्य सभ्यता और धर्मदृष्टि के भी जो विचित्र नस्लवादी, एकेश्वरवादी और साम्राज्यवादी पूर्वग्रह काम करते रहे हैं, मानव इतिहास को अपने परद्रोही और विश्वविजेता इतिहास में संकुचित कर देने की, देव तत्व और मनुष्य के बीच के लाखों बरसों के संवाद की संचित अनुभव-राशि को मिथ्या बहुदेववाद कहके खारिज कर देने और अपने संप्रदाय से बाहर की समूची मनुष्य जाति को जाहिल, अभिशप्त और ईश्वरीय अनुग्रह से सदा-सदा को वंचित मानने, प्रचारित करने की जो 'अहंकारविमूढ़ात्मा' मनोवृत्ति इस अन्यथा प्रशंसनीय और अथक परिश्रमी विद्वत्ता को मूल में ही जिस तरह आरंभ दूषित कर देती रही है-उसकी भी यथेष्ट चर्चा की। वैदिक काव्य में मनुष्य का कैसा स्वरूप और सामर्थ्य झलकता है और परवर्ती भारतीय साहित्य में सारे उलटफेर और ऐतिहासिक स्मृतिभ्रंश के बावजूद कैसे उस स्वरूप और सामर्थ्य की छवियाँ उजागर होती रही हैं, इसका भी संकेत किया। गायत्री मंत्र की व्याख्या करते हुए मैंने स्पष्ट किया कि किस तरह यह 'प्रकाश' का संपूर्ण प्रतीक है और किस तरह वेदों का प्रमुखतम और सर्वाधिक व्यापक प्रतीक यह 'प्रकाश' ही है। वैदिक जीवन-दृष्टि की इन प्रकाश प्रतीकों और देवताओं तथा तथा मिथकों के माध्यम से व्याख्या करते हुए कई उदाहरण भी वैदिक काव्य के प्रस्तुत किए। यह भी किस तरह की विकास है। अंत में व्याख्यान के समस्त सूत्रों को समेटते हुए मैंने श्रोताओं का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया कि प्रेरणादीप्त ऋषियों के सामने भी आज की मानवता की ही तरह पवित्र प्रकाश और उन्मुक्ति की संभावनाओं के अवरुद्ध हो जाने की, तमसावृत हो जाने की अनिष्ट संभावनाएँ विद्यमान थीं। प्रकाश और अंधकार, स्वातंत्र्य और बंधन दोनों के द्वंद्व का तीखा अनुभव उनको था। इसीलिए वे 'वरिवस्था' अर्थात् 'घोर जकड़बंदी के बीच हिलने-डुलने के अवकाश' की बात करते हैं, सब मार्गों के जाननेवाले अग्निदेव से सत्पथ पर ले चलने की, हर जकड़न को पिघला देने की प्रार्थना करते हैं। वैदिक मानव के लिए यूरोपीय चिंतक पास्कल की तरह अनंत अंतरिक्ष भय का नहीं, अभय का स्त्रोत क्यों था-इसपर भी हमें मनन करना चाहिए। इस पर भी, कि यदि कोई चीज ऐसी थी, जिससे वैदिक मानव त्रस्त अनुभव करता था, तो वह या तो 'अभ्वम्' अर्थात् अतलांत अँधेरा था या फिर 'अम्हस' अर्थात् चारों तरफ से गिर जाने का, अंतरिक्ष के निस्सीम विस्तार की जगह एक कारागृह में जकड़ जाने की आशंका का अनुभव। 'प्रकाश' ही इस रहस्यागर्भ ग्रंथ की कुंजी है, प्रकाश और तद्रूप स्वातंत्र्य ही वैदिक वाङ्मय की सारी बिंबमाला और सारे रूपकों मिथकों (वल, वृत्र, पणि आदि) को बोधगम्य बनाने वाला अभिप्राय है और मनुष्य में जो अंतर्निहित पात्रता-योग्यता है, इस 'प्रकाश' का आवाहन कर सकने की, उससे प्रेरणा प्राप्त कर सकने कर सकने की, उस मानवी क्षमता को ही वैदिक काव्य 'धी' कहता है। पर यही एकमात्र शब्द नहीं है उस क्षमता को नाम देनेवाला। प्रकाश के प्रतीकों-रूपकों से जुड़े जितने शब्द हैं, उतनी शब्द राशि मनुष्य की प्रकाशोन्मुखता और प्रेरणा वहन कर सकने वाली क्षमता को सूचित करने के लिए भी वहाँ विद्यमान है। अर्थ के कितने-कितने स्तरों पर हमइन बिंबों-रूपकों -प्रतीकों को खुलते- खिलते अनुभव कर सकते हैं। स्पष्ट ही, यह सारा अर्थ गौरव और अर्थ-संचरण की प्रक्रिया उन मंत्रद्रष्टाओं के कविकर्म के माध्यम से ही संभव होती है। अकारण नहीं कि इस कविता और दिव्य कविकर्म के लिए भी 'ब्रह्मन्' शब्द का ही प्रयोग हुआ है। इसलिए कि वह दैवी वाक् का ही मानवीय 'धी' में अवतारण और संचरण है। इस तथ्य पर विशेष बल देते हुए कि इस काव्य में, स्थूल ऐतिहासिक घटनाओं संयोगों का कहीं भी कोई महत्व दिया गया, मैंने कहा कि इसके बावजूद उसका एक गौरवशाली इतिहास है। अनूठे सत्य साक्षात्कारों का साझा करने वाली मानव संस्कृति की एक सतत गतिमान जय-यात्रा जिसमें एक प्रकाशमय प्रारंभ की स्मृति किसी -न-किसी प्रकार बराबर बनी रही है, साथ ही वर्तमान संकट का अहसास भी बोलता है। और वह स्वर भी, जो भविष्य की ओर संकेत करता है। अपने आगे के व्याख्यानों में-मैंने कहा-मैं इसी इतिहास और इसी भविष्य की बात करना चाहूँगा। व्याख्यान का आरंभ मैंने शंकराचार्य के ब्रह्मसूत्र भाष्य के निम्न उद्धरण से किया था- 'हम आज के जमाने के लोगों के लिए जो अबूझ और अगोचर है, वह हमारे प्रचीन पुरखों के लिए सर्वथा गोचर और प्रत्यक्ष संवेद्य था। शास्त्रों में यह बाकायदा दर्ज किया गया है कि व्यास आदि श्रेष्ठ पुरुषों को देवताओं और ऋषियों के साक्षात् दर्शन होते थे, उनसे आमने-सामने संवाद होते थे, उनसे आमने-सामने संवाद होता था उनका। हमारी वह औकात नहीं है, इसका मतलब यह तो नहीं कि हम अपनी अल्पप्राण क्षमता के पैमाने से उन महाप्राण ऋषियों की प्रतिभा को मापने की अनधिकार चेष्टा करें जो मंत्रों -ब्राह्मणों के द्रष्टा थे।' व्याख्या का समापन मैंने इसी शताब्दी के एक प्रख्यात स्पेनिश कवि हेमेनोस की कविता से किया, जो मुझे बड़े मार्मिक ढंग से, अनजाने और अनायास ही वैदिक कवि की प्रार्थना को ही मानो फिर से आज की संकटापन्न स्थिति में दुहाराती और पुष्ट करती जान पड़ी थी। वह कविता यों है -

**'हे बुद्ध मुझे प्रदान कर**
**सही और सटीके नाम चीजों के**
**शब्द मेरा बन जाए और वस्तु स्वयं**
**मेरी आत्मा द्वार सद्य सृजित**
**मेरे माध्यम से वे सारे लोग**
**जो विस्मृत कर चके वस्तुओं को**
**उन वस्तुओं के मर्म तक पहुँच सकें**
**कुछ ऐसा करो, हे बुद्धि**
**कि मेरे माध्यम से वे भी**
**पहुंच सकें उन तक**
**जिन्हें प्यार है वस्तुओं से।'**

(अक्षर पर्व से साभार)